P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-IV, ISSUE-III, February-2016
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

''दयानन्दीयाभिमत ऋत एवं सत्य शब्दवाच्य का अध्यात्म–मन्तव्य''

सहदेव शास्त्री
वरिष्ठ व्याख्याता,
संस्कृत विभाग,
स.ध. राजकीय महाविद्यालय,
ब्यावर, अजमेर

सारांश

संसार में महापुरुष अध्यात्मक गुरु, समाज सुधारक आदि अनेक उत्पन्न हुए है। किन्तु उनमे से एक महर्षि दयानन्द सरस्वती जो वेदानुसार ऋत (सृष्टि अनुकूल शाश्वत सत्य) सत्य : (नश्वर भौतिक सत्य) का वेदानुकूल अध्यात्म मन्तव्य प्रस्तोता एक अद्वितीय ऋषि थे जिन्होंने सर्वप्रथम वेद सब सत्य विधाओं का पुस्तक है वेदो का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है 28 नियमों में से नियमों में प्रतिपादन कर विश्वपटल पर एक आलोकपुंज को स्थापित करते हुए ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में सुस्पष्ट किया वेदेषु सर्वाः विद्याः सन्ति मूलोद्देशतः अर्थात वेदो में ऋतादि सृष्टि की सम्पूर्ण विद्याएं मूल उद्देश्य के रूप में विद्यमान ह चूँकि मनु महर्षि के अनुसार वेद सर्वज्ञानमयो हि सः सर्वविद्या निधानाः होने से संसार की सम्पूर्ण विद्याएं वेद में सूक्ष्ममेक्षिक्य निहित है महर्षि वेद व्यासा नुसार ये विद्याएं उसी प्रकार सूक्ष्म रूप म विद्यमान है जिस प्रकार दही के प्रत्येक भाग में नवनीत विद्यमान है तथा जैसे काष्ठ में अग्नि सूक्ष्म रूप में विद्यमान है इन्ही विद्याओं का वेद एवं पाश्चात्य वेद मनीषियों द्वारा प्रतिपादित कर अपने शोध पत्र में उद्घाटन करने की कोशिश की है।

मुख्य शब्दः अध्यात्म–मन्तव्य, दयानन्दीयाभिमत ऋत,

पस्तावना

"आत्मनि इति" अध्यात्मम् अधिपूर्वक आत सातत्यगमने धातु से मनिन् प्रत्यय से आत्मन् शब्द के निष्पन्न से लौकिक विग्रह द्वारा अध्यात्म शब्द बना। अर्थात् "आत्मनि देहे, मनसि वा इति" "विभक्तयर्थे....." इस सूत्र से संस्कृत वाङ्मय मे अध्यात्म शब्द निष्पन्न होकर आत्म"ाब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ– 1. आत्मा, 2. देह, 3. मनः।[1] महाभारत में दो अर्थ प्रयुक्त है। "अनुरागात्मा शरीरात्मा च" मनुमहर्षि ने भी "त्रैविधम्" (1.3.67) शब्द को स्पष्ट करते हुए दण्ड, नीति एवं आन्वीक्षिकी के अन्तर्गत अध्यात्म के भी तीन अर्थ प्रकट किये – 1. शरीर, 2. आत्मा, 3. परमात्मा सम्बन्धित विद्या।[2] इस प्रकार लोक में आत्मा शब्द 1. शरीर, 2. जीव एवं 3. ई"वर तीन अर्थों में प्रयुक्त होकर "आत्मा का जीव और ईश्वर–अर्थ सर्वप्रसिद्ध है गीता में– "स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते" कहकर स्वभाव को अध्यात्म कहा है। श्री धर के मतानुसार– "प्रत्येक शरीर में परब्रह्म की जो सत्ता या अंश वर्तमान रहता हैं वही अध्यात्म है। आत्म सम्बन्धी ज्ञान या आत्मा अनात्मा का विवेक विद्या ही अध्यात्म तत्व विद्या है या जीव और ब्रह्म का स्वरूप ही अध्यात्म है।"

अध्यात्म–विद्या से तात्पर्य–"ारीर की नीरोगता, आत्मा के स्वरूप ज्ञान से सांसारिक दुःखों से निवृत्ति और ई"वर के ज्ञान से आनन्द की प्राप्ति[3] आदि वेद में अनेक विद्याओं का वर्णन होने से मनु के "सर्वज्ञानमयो हि सः[4]" के अनुसार "वेद सबसत्य विद्याओं का पुस्तक है" तथा "वेदेषु सर्वाः विद्याः सन्ति मूलोद्द"ाः[5]" स्वामी दयानन्द जी ने उद्घोषणा की "वेदाः सर्वविद्यानिधानाः" सूक्ष्ममेक्षिकया अथर्ववेद में "हन्ति आत्मानमात्मना" आदि में आत्मा शब्द शरीर अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।[6] **महाभारतकार कृष्णद्वैपायन व्यास** ने अपने पुत्र **शुकदेव** को अध्यात्म–विद्या का उपदे"ा महाभारत क शान्तिपर्व में स्पष्ट किया है कि– जिस प्रकार दही के प्रत्येक भाग में नवनीत सूक्ष्मरूपेण विद्यमान है तथा जैसे काष्ठ में अग्नि सूक्ष्मरूप है उसी प्रकार दस–सहास्री ऋचाओं का प्रत्येक ऋचा में सूक्ष्मरूप से अध्यात्मविद्या विद्यमान है।[7] अतः **स्वामी दयानन्द महाराज** ने यदि वेद मंत्रों का अध्यात्म परकार्थ किया है, तो उन्होंने शास्त्र सम्मत, शरीर विज्ञान, आत्मविज्ञान एवं परमात्माज्योति प्रदान की।

ऋत एवं सत्यशब्द की धारणा

वैदिक ऋषियों की अत्यन्त मौलिक देन **'ऋत'** है।

'ऋत'शब्द का विवेचन

आचार्य यास्क ने 'ऋत' का अर्थ उदक, सत्य एवं यज्ञ किया है।[8] ऋत के ऊपर सारी सृष्टि–व्यवस्था आधारित है। ऋक् में विभिन्न रूपों तथा विभक्तियों में इसका प्रयोग लगभग छह सौ छियालीस (646) बार किया गया है।[9] वैदिक–ऋषि इस तथ्य से भली भांति परिचित थे कि ऋत ही सम्पूर्ण जगत् का आदिकरण है। ऋत अपने इस रूप में परमतत्त्व के समकक्ष या परमतत्त्व ही प्रतीत होता है।

'ऋत'शब्द गत्यर्थक 'ऋ' धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है क्रियाषील। **यास्क जी ने इसका अर्थ 'उदक'**, सत्य, यज्ञ एवं 'रेतस्' किया है।[10] यही दयानन्दीयाभिमत है। **सायणाचार्य भी यास्क** के मत का अनुगमन ही करते हैं। उन्होंने 'ऋत' को कर्मफल, स्तोत्र एवं गति के अर्थ में भी माना है।[11] कहीं–कहीं तो एक ही मंत्र में दो बार आए हुए 'ऋत' का अर्थ उन्होंने भिन्न–भिन्न किया है जैसे कि एक मंत्र में 'ऋतस्य' का अर्थ **'गतस्य'–'पलायितस्य'** किया है, उसी मंत्र के साथ पठित दूसरे मंत्र में **''ऋतस्य यज्ञस्य अलस्य वा''** इस प्रकार करते हुए उन्होंने भिन्न–अर्थ–प्रकट किया है।[12] साथ ही एक अन्य मंत्र में 'ऋत'शब्द चार बार आया है। सायण ने प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ का अर्थ 'स्तोत्र' तथा तृतीय में 'ऋत' का अर्थ 'उदक' किया है।[13]

पाश्चात्य–भाष्यकार 'ग्रिफिथ' के मतानुसार 'ऋत' शब्द से विष्व व्यवस्था तथा उसके विधान का निर्देष मिलता है। अतएव इन्होंने सर्वत्र ऋग्वैदिक सूक्तों के अनुवाद में 'ऋत' शब्द का अर्थ 'शाश्वत नियम' **(इटर्नल लॉ)** एवं पवित्र नियम **(होली आर्डर)** किया है।[14]

रॉय के अनुसार 'ऋत' प्रकृति का एक नियम है। उन्होंने यज्ञ–सम्बन्धी नियम एवं मानवजीवन के व्रत आदि को भी 'ऋत' का अभिधायक बताया है।[15]

'मोनियर विलियम' ने 'ऋत' को यज्ञ सम्बन्धी नियम, दैवी नियम तथा दैवी सत्य के रूप में स्वीकार किया है। अर्थात् इनके अनुसार 'ऋत' अनेकार्थक है।[16]

इन्होंने यज्ञ–सम्बन्धी नियम तथा मानव–जीवन के व्रत आदि को भी 'ऋत' का अभिदायक कहा है।[17]

विल्सन ने प्रायः सर्वत्र सायण के ही **अर्थों** का अनुगमन किया है।[18] **ब्लूमफील्ड** ने 'ऋत' का अर्थ **''ब्रह्माण्डीय नियम''** या **''विश्व का नियम''** किया है।

श्री अरविन्द ने 'ऋत' को सदाचार का मापदण्ड माना है। **'अरविन्द'** के शब्दों में सब वस्तुओं का सारभूत पदार्थ 'ऋत' है, भौतिक से आध्यात्मिक रूप में परिवर्तन का कारण 'ऋत' ही है। 'ऋत' 'सूर्य' 'चन्द्र' आदि का नियम दिखायी देता है। किन्तु वस्तुतः यह आचरण का नियम है।[19]

विभिन्न विद्वानों की उपर्युक्त धारणाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'ऋत' एक ऐसे अटल विधान की ओर संकेत करता है जिसके आधार से इस समस्त सृष्टि चक्र का प्रवर्चन हो रहा है तथा यह सम्पूर्ण नैतिक मूल्यों और नियमों का प्रेरक है। ऋग्वैदिक ऋचाओं के अध्ययन के आधार पर कह सकते हैं कि दैवी जगत् में ऋत वह अनन्त एवं शाश्वत नियम है जिसके अधीन धरती, आकाश, सूर्य, चन्द्र, रात–दिन, मास एवं ऋतुएं आदि सब मर्यादित होकर अपने–अपने कार्य में सलंग्न है। मानव–जगत् में 'ऋत' उन नैतिक मूल्यों एवं आदर्षों का अधिष्ठाता है जो जीवन के प्रेरक हैं और जिन पर समाज प्रतिष्ठित है। वस्तुतः जगत् की व्यवस्था के पीछे छिपे सिद्धान्त को ही वेद ने 'ऋत' कहा है।

मनुष्यों–द्वारा–विधीयमान कार्यों में 'ऋत' नैतिक नियम के रूप में प्रवृत्त हाता है। यज्ञों में व्रत, अनुष्ठान, सदाचार इत्यादि नियमों का पालन करना आवश्यक था। ये सारी क्रियाएं 'ऋत' द्वारा नियमित होती थी। जिसका विपरीतार्थक शब्द ''अनृत'' उपलब्ध होता है, जो असत्य के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। ''सत्य'' और ''अनृत'' धीरे–धीरे उचित और अनुचित कृत्यों के अर्थ में प्रयुक्त होने लगे। **सुप्रसिद्ध यम–यमी** सूक्त[20] में यम ने यमी से स्पष्ट शब्दों में कहा है– हम लोग ''ऋत'' अर्थात् सत्य बोलते हुए अनृत आचरण कैसे करेगे?[21]

यहाँ ऋतशब्द से तात्पर्य उचित तथा ''अनृत'' का अनुचित से है। वैदिक ऋषियों ने अग्नि, सूर्य, उषा, मित्र, वरुण एवं बृहस्पति आदि देवताओं को ''ऋत'' से उत्पन्न कहा है।[22]

ऋत सम्पूर्ण प्रकृति में ओत–प्रोत है। अनेक–मंत्रों में उषा देवी को **'ऋतावरी'**[23] तथा नदी को भी **'ऋतावरी'** यद्यपि उन स्थलों पर ऋत का अर्थ 'उदक' है।[24]

ऋग्वेदीय–ऋषि 'ऋत' को राष्टोय प्रतिष्ठा के आधार स्तम्भ के रूप में भी स्वीकार करता है। वह राजा वरुण से 'ऋत' द्वारा 'अनृत' को दूर कर राष्ट्र का अधिपति बनने की प्रार्थना करता है।

ऋत का अनुसरण करने से पाप सर्वथा दूर रहता है और किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। साथ ही एक मन्त्र में आदित्यों से 'ऋत' पर चलने वाले के मार्ग को सुगम तथा निष्कण्टक करने की प्रार्थना की गई है।[25]

अतः यदि 'ऋत' को परमतत्त्व के रूप में भी स्वीकार कर ले, तो कोई अति"ायोक्ति नही होगी। ऋग्वेद में किसी देव–वि"ोष को सभी ऋषियों ने परमतत्त्व नहीं माना है, अपितु सबके मत में यह भिन्न–भिन्न है,[26] तथापि ऋत की सत्ता सबसे स्वीकार की है। 'ऋत' एक ऐसा तत्त्व है, जिसे सबने स्वीकार किया है। अतएव यह सार्वभौमिक एवं शा"वत है।

सत्य शब्द का विमर्श

ऋग्वेद में 'ऋत' और 'सत्य' का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। एक मंत्र में मरुतों के 'ऋत'–द्वारा 'सत्य' को प्राप्त करने की बात कहीं गई है।[27]

ऋग्वेद में ''सत्य'' शब्द कर्त्ताकारक के रूप में इक्यावन (51) बार तथा करण कारक के रूप में पाँच (5) बार आया है।[28] **आचार्य सायण** ने एक मंत्र में आए हुए ''सत्येन'' पद की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट किया है कि सत्य का तात्पर्य ''ब्रह्मन्'' से है। बाद में उन्होंने उसे

''अनन्तात्मा'' का बोधक भी माना है।[29] **ग्रिफिथ** ने 'सत्य' को 'ऋत' का ही पर्याय स्वीकार किया है, जो इस जगत् के नियम के रूप में स्थापित है। ''ऋत'' (देवता) को स्तुति के द्वारा अपने व"ा में करने वाला व्यक्ति ऋत को ही प्राप्त कर लेता है। ''ऋत'' की शक्ति अत्यन्त तीव्र है। यद्यपि सामान्य–रूप से ऋत और सत्य को एक माना जाता है, किन्तु दोनों का अनेक स्थलों पर साथ–साथ प्रयोग होने से इनका पाथक्य लक्षित होता है।

''सत्य'' शब्द की निष्पत्ति सत्तार्थक ''अस्'' धातु से हुई है, अतः इसका अर्थ है अस्तित्व या होने का भाव। साथ ही ''ऋत'' गत्यर्थक ऋ धातु से निष्पन्न होने के कारण इसका अर्थ ''सत्य के प्रति गति"ाीलता'' कहा जा सकता है क्योंकि सत्य स्थिर तथा ऋत क्रिया"ाील का भाव है। अतएव ऋत एक अलौकिक एवं दा"ार्निक गम्भीरता से ओत–प्रोत होने के कारण ''सत्य'' भी लौकिक तथा व्यावहारिक जगत् का आचार है, तथापि सत्य भी दा"ार्निक–चिन्तन का विषय हो जाता है।[30] वस्तुतः सत्य का साक्षात्कार ही द"ार्न है। अतएव भारतीय इतिहास के सम्पूर्ण–युग में हम चिन्तकों को ''सत्य'' का अनुसरण करते देखते हैं। साथ ही उन्हें इसके दा"ार्निक एवं आध्यात्मिक स्वरूप के अन्वेषण में रत ही पाये जाते हैं।

ऋग्वेद में देवताओं को सत्यस्वरूप माना जाता रहा है। ऋग्वेद के प्रथम–सूक्त में ही अग्नि को सत्य कहा गया है।[31] साथ ही इन्द्र देव को भी एक स्थान पर सत्य की संज्ञा दी गयी है।[32] सत्य की उत्कृष्टता के कारण स्वरूप ही वैदिक–युग में सत्य तथा असत्य को द्वन्द्व दिखलायी पड़ता है। इस प्रकार हिरण्यगर्भ को भी सत्यधर्मा कहा गया है।[33] एक मंत्र में द्यावा पृथ्वी को सत्य युक्त कहा है।[34] देवों क आचार में सर्वत्र सत्य की भावना विद्यमान है।

ऋग्वेद में सत्य के महत्त्व प्रतिपादन के अतिरिक्त उसके प्रति गहरी निष्ठा भी व्यक्त की गयी है। एक ऋषि ने एक स्थान पर अपने विचार एवं अपने हृदय को सत्य से युक्त हो जाने की प्रार्थना की है।[35] साथ ही ऋग्वेद के मंत्र में कहा गया है कि विद्वान् व्यक्ति भलीभॉति अवगत है कि सत्य तथा असत्य वचन परस्पर स्पर्धा करते हैं। उनमें जो ऋजुतम, अकुटिल सत्य है, सोमदेव उसकी सदैव रक्षा करें तथा असव् को मार देते है।[36] आगे एक मंत्र में सत्यधर्माओं को परम व्योम में जाने को कहा गया है।[37] ऋग्वेद में सत्य की प्रतिष्ठा करने के साथ–साथ असत्याचरण की निन्दा भी की गई है। असत्यवादी तथा पापकर्मा लोग देवों के कृपापात्र नहीं बन सकते तथा एक मंत्र में तो असत्यवादी व्यक्ति को पापी कहा गया है।[38]

निष्कर्षतः नैतिक दृष्टि से सत्य का तात्पर्य इसकी अखण्डता तथा सार्वभौमिकता से है। **मुण्डक उपनिषद्** में कहा गया है–मुझे असत् से सत् की ओर ले जाओ।[39] सत् हमारे जीवन के प्रत्येक–क्षण में अनुबिद्ध है। वैदिक ऋषियों के मतानुसार पृथ्वी सत्य के द्वारा ही ऊपर की गयी है।[40] आगे जाकर सम्पूर्ण परवर्ती, साहित्य में सत्य का महत्त्व स्थापित किया गया है। **यजुर्वेद** के ऋषि भी यज्ञ के समय कहते हैं कि यह मैं अनृत (असत्य) से सत्य की ओर जा रहा हूँ।[41] सत्य के साम्राज्य का मूल **ऋग्वेद** में ही निहित है।

प्रकृति तत्त्व एवं मानव जगत् में ऋत का महत्त्व

ऋग्वेद के देवता विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों के मूर्त–स्वरूप है तथा उनका जन्म 'ऋत' से ही माना जा सकता है। एक मंत्र में –

''अग्निर्हि नः प्रथमजा ऋतस्य''[42]

यहाँ अग्नि को 'ऋत' का प्रथम पुत्र होने को कहा है। **ऋग्वेद** के **सूक्त** में वर्णन है कि सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा के तप (अभीद्धतपस्) से 'ऋत' एवं 'सत्य' उत्पन्न हुए और उसके बाद रात्रि समुद्र आदि क्रमषः अर्विभूत हुए।[43] इस प्रकार से 'ऋत' समस्त प्राकृतिक शक्तियों का प्रभाव है।

एक वैदिक मंत्र में ''द्यावापृथिवी'' के लिए कहा गया है कि वे 'ऋत' की योनि में एक साथ निवास करते हैं – **''ऋतस्य योना क्षयतः समोकसाः''[44]** **'ऋतजात'** एवं **'ऋत'** में निवास के देवता 'ऋत' के मार्ग का ही अनुसारण करते है – **''ऋतस्य देवा अनुव्रता गुः''[45]**

'ऋत' प्रकृति का एक ऐसा विलक्षण विधान है कि जिसका देवताओं के लिए अनिवार्य है। अतएव इन्हें 'ऋतज्ञाः' की उपाधि से विभूषित माना गया है।[46]

इस प्रकार प्रतीत होता है कि देवतओं ने 'ऋत' के ज्ञान–द्वारा ही अमृतत्व प्राप्त किया हो। वैदिक कवियों को समस्त प्रकृति ही 'ऋतमयी' दिखायी दी है। एक स्थान पर उल्लेख है कि विस्तृत अन्तरिक्ष, द्युलोक एवं विशाल पृथिवी 'ऋत' का ही विस्तार है।

''ऋतस्य हि प्रसितिद्यौरूर्व्यचो नमो महारमतिः पनीयसी।''[47]

एक मंत्र में ऋषि ने अत्यधिक भावविभोर होकर उदय होते हुए सूर्य को 'ऋत का पवित्र एवं द"ार्नीय चेहरा' बताया है।[48] इसी भांति वेद में समस्त ब्राह्मण के साथ 'ऋत' का तादात्म्य द"ार्याया गया है।

अतएव कहा जा सकता है कि 'ऋत' वि"व"ाक्ति या परमतत्त्व के सारूप्य को प्राप्त करता हुआ सा दिखायी देता है। वैदिक ऋषि इस तथ्य से भली–भॉति परिचित थे कि **ऋत सम्पूर्ण जगत् का आदि स्तम्भ है**, जो धरती–आका"ा, सूर्य, अग्नि आदि सबका उत्पादक एवं नियन्ता है, क्योंकि वैदिक देव उक्त प्रकृति शक्तियों के ही मानवीकत–रूप है, जो कि प्रकृति से उदभूत हुए है और सदा उसके अनु"ाासन में रहते हैं, इसलिए यह कहा जा सकता है कि 'ऋत' जिसको कि वेद में सब देवों को जन्म देने वाला एवं उनका शासक कहा गया है। प्रकृति–सूक्ष्म–रूप में प्रतीत होती है, जिसमें एक दा"ार्निक गहराई छिपी हुई ह। मंत्रों में आए अग्नि, सूर्य, उषा, पृथिवी, इन्द्र तथा वरूण आदि प्राकृतिक तत्त्वों के द्योतक शब्द अपने दान द्योतन व दीपन गुणों के कारण देवतावाचक भी है। अतएव समस्त भौतिक पदार्थों में व्याप्त संसार में सर्वत्र उस सर्व"ाक्तिमान, सच्चिदानन्द की सत्ता एवं विलक्षण लीला के ही द"ार्न होते हैं।

मानव–जगत् में 'ऋत' का माहात्म्य

दैवी तथा प्राकृतिक जगत् की भांति 'ऋत' मानव–जगत् का भी आधार स्तम्भ है। 'ऋत' अनेक प्रकार

सुख–"ाान्ति तथा भौतिक–सम्पदा का द्योतक भी है, इसकी भावना पापों एवं दुखों को नष्ट करती है। 'ऋत' की जड़े सदृढ़ हैं, इसके सुन्दर रूप में अनेक कामनीयरूप अन्तर्भूत हैं, 'ऋत' के आधार पर प्रचुर अन्नादि खाद्य पदार्थों की कामना की जाती है। 'ऋत' की शक्ति अत्यन्त तीव्र है और इच्छित वस्तुओं को देने वाली है। विस्तृत एवं गहन पृथिवी तथा आका"ा 'ऋत' से सम्बद्ध है, 'ऋत' के लिए ही श्रेष्ठ गौएँ दूध देती है।[49] **ग्रिफिथ** ने यहाँ भी 'ऋत' शब्द का अर्थ **'इटरनल लॉ'** तथा **'होली आर्डर'** किया है।[50]

अतएव 'ऋत' सुख समृद्धि का साधन है, तथा 'ऋत' शब्द के माध्यम से यहॉ भी सृष्टि के उन शा"वत ई"वरीय नियमों की ही महिमा गाई गई है जिनका पालन करने से सुखपूर्वक एक आद"ा–जीवन जिया जा सकता है।

वैदिक कवि राष्ट्र की प्रतिष्ठा का आधार भी 'ऋत' को ही मानते थे तथा कहा गया है कि –

''ऋतेन राजन्ननृतं विविञ्चन् मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि''[51]

वस्तुतः 'सत्य' ही व्यक्तिगण, राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन के प्रेरक नैतिक आद"ार्ों का एकमात्र आधार है।

'ऋत' को ऋग्वेद में मानव–जीवन का महत्त्वपूर्ण–तत्त्व माना गया है। एक वैदिक–मंत्र में कहा गया है कि वेद (ब्रह्मा) ने आर्य को 'ऋत' के स्थान पर स्थित किया।[52] तथा अन्य में से भी ज्ञात होता है कि आर्यों के गृह में 'ऋत' की धाराएँ प्रवाहित होती है।[53] जिससे पारिवारिक जगत् में 'ऋत' का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। वैदिक–ऋषि–मन्त्र–दृष्टा–ऋषियों को यह वि"वास था कि ऋत के मार्ग का अनुसरण करने से पाप आदि का आविर्भाव न होकर सम्पूर्ण दुख नष्ट हो जाते हैं। मंत्र में आदित्यों से प्रार्थना की गयी है कि – **'ऋत पर चलने वाले के लिए उसके मार्ग को सुगम एवं कष्टरहित कर दो।'**[54]

ऋग्वेद के एक मंत्र में मित्रावरुण से कामना की गयी है कि जिस प्रकार से नौका द्वारा नदी पार करना सम्भव होता है, उसी प्रकार हम 'ऋत' के मार्ग का अनुसरण कर दुराचरणों से पार हो सके।

''ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम''[55]

'ऋत' के मार्ग को प्राप्त करने हेतु सदाचरण"ाील होना परम आव"यक है। अतएव कहा है – दुराचरण"ाील व्यक्ति 'ऋत' के मार्ग को पार नहीं कर पाते–

''ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः''[56]

वैदिक ऋचाओं में यह वि"वास व्यक्त किया गया है कि 'ऋत' का आचरण करने वाले व्यक्ति के लिए प्राकृतिक शक्तियाँ भी सुखोपालब्धि का कारण बन जाती है। वैदिक ऋषि एक स्थान पर कहते हैं कि – ''ऋत का आचरण करने वाले व्यक्ति के लिए हवाएँ माधुर्ययुक्त होती हैं तथा नदिया भी उसके लिए माधुर्य बहाती हैं – **मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।''**[57]

ऋत केवल ऐहलौकिक उपलब्धियों का ही नहीं, अपितु वह स्वर्ग प्राप्ति का भी सम्पादक है। मृत्यु के देवता यम से मृतक के लिए स्वर्ग में उन पितरों के पास जाने की कामना की गयी है जिन्होंने पहल 'ऋत' का आचरण किया है, जो ऋत से युक्त हैं, ऋत की वृद्धि करने वाले हैं और तपस्वी हैं।[58] तथा अमृतत्व की प्राप्ति हेतु भी माध्यम 'ऋत' ही माना गया है। 'ऋत' को इतना अधिक महत्त्व देने के साथ–साथ वेदों के चिरन्तन ऋषियों ने तदनुसार आचरण करने का भी दृढ संकल्प लिया था। वैदिक मंत्र में यह भी स्पष्ट है कि ''मैं पूर्ण सफलतापूर्वक ऋत के मार्ग का अनुसरण करता हूँ''–

''ऋतस्य पन्थामन्वेमिसाधुया।''[59]

ऋत अमृतत्त्व प्राप्ति का भी माध्यम है। एक मंत्र में ऋषि वि"वास प्रकट किया है कि ''ऋत की नाभि में अमृत उत्पन्न होता है''–

''ऋतस्य नाभिरमृंत विजायते''[60]

सत्य की प्राप्ति भी 'ऋत' द्वारा ही सम्भव है। ऋषि कहते हैं कि मरुतों को वे 'ऋत' द्वारा सत्य को प्राप्त हुए।[61]

जगत् विचार

ऋग्वेद में विभिन्न विभक्तियों और रूपों में 'जगत्' शब्द का 44 बार प्रयोग किया गया है।[62] जगत् की उत्पत्ति को लकर लगभग छह सूक्त उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद में जगत् के सम्बन्ध में दा"ार्निक विचारों से मण्डित सुप्रसिद्ध ''नासदीय–सूक्त'' है।

अलग–अलग स्थानों पर अन्याय देवताओं को जगत् का स्रष्टा कहा गया है। वस्तुतः देवों–द्वारा जगत् की रचना का विचार ऋग्वैदिक देववाद के साथ ही विकसित होता गया।

सत्य में निष्ठा, असत्य धारणा का विवेचन

ऋग्वैदिक ऋषियों ने देवताओं की स्तुति करते समय उन्हे सत्य–आचरण से युक्त बताया है।

ऋक. 10/190/1 में 'ऋत' तथा 'सत्य' को सृष्टि के आरम्भ में मंत्रद्रष्टया (ऋषियों के) तप से उत्पन्न कहा गया है और इसी सत्य के द्वारा रात्रि, समुद्र आदि क्रम"ाः प्रादुर्भूत हुए है[63] तथा सत्य द्वारा ही पृथिवी स्तम्भित हैं– **''सत्येनोत्तभिता भूमिः।''**[64]

स्वयं सत्य बोलने तथा उसके अनुकूल आचरण की भावना के साथ–साथ ऋग्वेद में देवताओं की स्तुतियाँ भी सत्य के अनुरूप ही कही गयी है। सत्य के विषय में वैदिक–कवियों के हृदय में यह विश्वास उत्पन्न हो गया था कि अन्त में सत्य की विजय होती है और असत्य पराजित होता है। ऋक्. के 7/104/12 में कहा गया है कि ज्ञानी व्यक्ति को यह सुविदित है कि सत्य एवं असत्य वचन परस्पर प्रतिस्पर्द्धा करते हैं। एक मंत्र में सत्य बोलने तथा सत्य कर्म करने का आदे"ा दिया गया है।[65] तथा सत्य की सोम रक्षा करते हैं, और असत्य को मार देते हैं।

''सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्त दित् सोमोऽवति हन्त्यासात्।।''

ऋग्वेद में जहाँ सत्य के प्रति निष्ठा एवं आस्था व्यक्त की गयी है वहॉ असत्य वचन एवं असत्य कर्मो की निन्दा भी की गयी है। वैदिक कवियों की धारणा थी कि असत्यभाषी एवं पापी व्यक्ति देवताओं की सहानुभूति के पात्र नहीं बन सकते जिसके विपरीत उन्हें देवताओं का कोपभाजन बनना पड़ता है। एक मंत्र से स्पष्ट है कि ''सोम देवता राक्षस तथा असत्य बोलने वाले को मार डालता है।''[66] साथ ही एक दूसरे मंत्र में जो असत्यवादी है उसे पापी की संज्ञा दी गयी है67 तथा दूसरी ओर प्रार्थना की गयी है कि सत्य को दबाने वाले को नष्ट कर दो।[68]

ऋग्वेद में तो असत्य के प्रति धारणा का वर्णन तो मिलता ही है। यजुर्वेद में भी अनृत से सत्य को प्राप्त करने की प्रार्थना की गयी है।[69] **शतपथ ब्राह्मण** में उस व्यक्ति (जो असत्यभाषी हो, पापी हो) को अपवित्र एवं पापी माना गया है।[70] **मनुस्मृति** में कहा गया है कि सत्य से बढ़कर कोइ धर्म नहीं तथा अनृत से बढ़कर कोई पाप नहीं।[71]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः महर्षि दयानन्दीयाभिमत में यास्काचार्य प्रतिपादित **'आध्यात्मिक्यश्च'** की भावना से ऋचाओं के प्रतिपदों का अर्थ अध्यात्मपरक अर्थात् परमार्थकपरक अर्थ करके अन्य सायणादि भाष्यकारों से भिन्न भाष्य करके स्वामी जी ने हमें उपकृत किया। महर्षि की यह भाष्यपद्धति सर्वग्राह्य एवं नवीनतम योगरूढ़ एवं योगिक हैं। यही भाष्यपद्धति ही वैज्ञानिक तथ्यपरक होने पर सर्वमान्य एवं अनुपम है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत"ाब्दार्थो कौस्तुम्–पै. तरिणी"ा झा–पृ.सं.–47 पर
2. मनुस्मृति के राजधर्म प्रकरण में – 7/43 श्लोक
3. वैदिक सिद्धान्त मीमांसा प्र.भाग पृष्ठ सं. 69 पर द्रष्टव्य
4. मनुस्मृति – 2/7 द्र.
5. ऋर्ग्वेदादि भाष्य भूमिका–स्वामी दयानन्द सरस्वती
6. अथर्ववेद द्र. 10/2/32
7. महाभारत शान्तिपर्व में व्यासकृत–शोध 246/14/15
8. ऋतमित्युदकनाम/निरुक्त 2/25। सत्यं वा यज्ञं वा। निरुक्त 4/19
9. ऋग्वेद संहिता – पंचम भाग, सूची खण्ड, पृ.सं. 156 से 158 तक
10. ऋतमित्युदकनाम/ निरुक्त – 2/25 सत्यं वा यज्ञं वा/ नि. 4/19 ऋतषब्देन रेत उच्यते/ निरुक्त 4/20
11. ऋग्वेद 1/1/8, 68/5, 185/10, 10/5/7 इत्यादि पर सायण भाष्य द्रष्टव्य।
12. ऋग्वेद 1/65/3–4 सायण भाष्य।
13. ऋग्वेद 5/12/2 पर सायण भाष्य।
14. द्रष्टव्य – ऋग्वेद के 'ऋत' शब्द पर सर्वत्र ग्रिफिथ का अनुवाद।
15. एनाल्स ऑफ भाण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट, वाल्यूम 25, पृ. 27 (1954)
16. ऋत शब्द पर मोनियर विलियम डिकषनरी, पृ.223
17. एनल्स ऑफ भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, भाग – 35, पृ. 27
18. पुराणी, ए.बी.–स्टडीज इन वैदिक इन्टरोटेषन, पृ. 49 व 53
19. अरविन्द : सीक्रेट ऑफ वेदाज (वेदरहस्य) पृ. 102 व 107
20. ऋग्वेद 10/10
21. कद्धं नूनमृता वदंन्तो अनृतं वदेम। ऋ.10/10/4
22. ऋग्वेद 1/113/12, 189/6, 2/23/15, 3/54/13, 4/40/5, 7/66/13 इत्यादि
23. ऋग्वेद 2/41/18, 3/33/5, 6/61/9
24. ऋतमर्षन्ति सिन्धवः/ ऋग्वेद 1/115/12
25. ऋतेनं राजन्ननृतं विविचंन् मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि/ ऋ. 10/124/5
26. सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते। ऋ. 1/41/4
27. एकं सद् विप्रा बहुधा वेदन्ति। ऋ. 1/164/46
28. ऋतेनं सत्यमृतसापं आयन्। ऋग्वेद 7/56/12
29. ऋ. संहिता पंचम भाग, सूची खण्ड, पृ. 604/5
30. सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः। ऋ. 10/85/1
31. शर्मा गणेषदत्त–ऋ. में दार्षनिक तत्त्व, पृ. 170
32. युवां देवास्त्रयं एकादषासः सत्याः सत्यस्यं ददृ"ा पुरस्तात्/ ऋ.80/57/2
33. यच्चिद्धि संत्य सोमपा/ ऋ.1/29/1
34. ऋग्वेद 10/121/9
35. ऋग्वेद 3/54/3
36. ऋग्वेद 10/128/4
37. सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृघोट तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति।। ऋ. 7/104/12
38. सत्यंधर्मणा परमे व्योमनि। ऋ.5/63/1
39. पपासः सन्तों अनृता असत्याः। ऋग्वेद 4/5/5
40. असतो मा सद् गमय। वृहदारण्यकोपनिषद् 1/3/28
41. ऋग्वेद 10/85/1
42. ठदमहमनृतात्सत्यमुपैमि। शुक्लयजुर्वेद 1/15
43. ऋक. 10/5/7
44. ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तसोऽध्यजायत....। ऋ. 10/190/1
45. ऋक्. 10/65/8
46. ऋक्. 1/65/2
47. ऋक्. 7/35/15, 10/64/16
48. ऋक्. 10/92/4
49. ऋतस्य शुचि दर्षतमनोकं रूक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत्। ऋक्. 6/51/1
50. ऋतस्य हि शुरूधः सन्ति पूर्वार्ऋतस्य धीतिदृजिनानि हन्ति।
51. ऋक्.4/23/8,9,10 पर ग्रिफिथ का अनुवाद।
52. ऋक्. 10/124/5
53. वेधा अजिन्वत् त्रिषधस्थ आर्यम्।
54. ऋतस्य भागे यजमानमाभजत्। ऋक्. 1/156/5
55. एते धामान्यार्यां शुक्रा ऋतस्य धाराया।

56. वजम् गोमन्तमक्षरन्। ऋक्. 9/63/14
57. सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते/ऋकं 1/41/4
58. ऋक्. 7/65/3
59. ऋक्. 9/73/6
60. ऋक्.1/90/6
61. ये चित्पूर्व ..... ताँ"चद्देवापि गच्छतात्।। ऋकृ. 10/154/4
62. ऋक्. 10/66/13
63. ऋक्. 9/74/4
64. ऋतेन सत्यं ऋतसाप आयन्। ऋक्. 7/56/12
65. ऋग्वेद संहिता पंचम भाग, सूची खण्ड, पृ. 220–221
66. ऋतं च सत्यं चाभीद्वात्तपसोऽअध्यजायत..... अर्णवः।
67. ऋक्. 10/85/1
68. सत्य वदन्त् सत्यकर्मन्। ऋक्. 9/113/5
69. हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तम। ऋक्. 7/104/13
70. पापासः सनतो अनृताः असत्याः। ऋक्. 4/5/5
71. ऋक्. 10/8/13